International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 04(II), October - December, 2022, pp. 263-267

प्राचीन भारतीय चिंतन में सम्पत्ति का अधिकार

डॉ. पुष्पा चौधरी*

सार

प्राचीन भारतीय चिंतन में व्यक्ति के नैतिक व समाज सापेक्ष आचरण को धर्म का मूल माना गया है। यह कथन व्यक्ति को प्राप्त सम्पति के अधिकार पर भी लागू होता है। वेदों में जहां व्यक्ति के सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई है वहीं व्यक्ति को सम्पत्ति के अर्जन, धारण एवं उपभोग हेतु स्पष्ट निर्देश भी प्रदान किये गये हैं। अर्जन का आधार श्रम को माना गया है तथा यह भली भांति प्रतिपादित किया गया है कि व्यक्ति अर्जित सम्पत्ति का उपभोग अपरिग्रह का पालन करते हुए सामाजिक लाभ के लिए भी करेगा। वेदों में सम्पत्ति के दान को महत्ता प्रदान करते हुए यह कहा गया है कि निजी सम्पत्ति तभी तक वैध है जब तक पूरा समाज उससे लाभान्वित होता है। किन्तु प्राचीन भारतीय चिन्तन में सम्पत्ति के अधिकार को असीमित अथवा निर्बाध नहीं माना गया है अपितु आवश्यकतानुसार राज्य द्वारा सम्पत्ति के नियमन पर बल दिया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र प्राचीन भारतीय चिंतन में निजी सम्पत्ति के अधिकार की विवेचना करने का एक प्रयास है।

शब्दकोशः *प्राचीन भारतीय चिंतन, पुरूषार्थ, निजी सम्पत्ति, व्यक्तिगत हित, सार्वजनिक हित, उत्तराधिकार।*

प्रस्तावना

वैदिक चिंतन, महाकाव्यों एवं नीतिशास्त्रों में सम्पत्ति के अधिकार के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। प्राचीन चिंतन में पुरूषार्थों की सिद्धि को जीवन का लक्ष्य घोषित किया गया है। चारों पुरूषार्थ (धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष) जीवन की समग्र उपलब्धियों के विविध आयामों व संदर्भों को व्यक्त करते हैं। धर्म व मोक्ष आध्यात्मिक व पारलौकिक लक्ष्य एवं अर्थ व काम उपभोग की वृत्ति का बोध कराता है। धर्म और मोक्ष के साथ अर्थ व काम का संयोग भारतीय दृष्टिकोण की इस विशिष्टता को व्यक्त करता है कि सम्पत्ति का अभर्यादित अर्जन व व्ययन अस्वीकार्य है।

वेदों में सम्पत्ति के अर्जन, धारण व व्ययन के अधिकार की व्यवस्था की गई है। अनेक प्रसंगों में यह उल्लेख किया गया है कि व्यक्ति या तो सम्पत्ति का अर्जन कर सकता है या उत्तराधिकार में प्राप्त कर सकता है। ऋगवेद में अनेकों प्रसंग यह स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति स्थाई सम्पत्ति का स्वामी बनने की प्रार्थना करते है।[1] इस प्रार्थना से निजी सम्पत्ति के अधिकार के स्पष्ट संकेत मिल जाते हैं। इसी प्रकार परम्परा में प्राप्त होने वाले धन के स्वामी होते हुए हमारे विहान पुत्र सौ वर्षों तक भोगों को प्राप्त करते रहे हैं।[2] उक्त प्रसंग से भी वेदों में सम्पत्ति के अधिकार का संकेत मिलता है, चाहे वह अर्जित की गई हो अथवा उत्तराधिकार से प्राप्त हुई हो।

वेदों में परिश्रम को सम्पत्ति के अर्जन का आधार माना गया है। एक स्थल पर एक व्यक्ति यह प्रार्थना करता है कि ''मैं किसी दूसरे के द्वारा कमाये गये धन से भोजन न करूं।''[3] एक अन्य प्रसंग में यह कहा गया है

---

* सह आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय कला महाविद्यालय, सीकर, राजस्थान।

कि देव उस व्यक्ति के मित्र नही होते जो परिश्रम नहीं करता।[4] एक प्रसंग में यह भी कहा गया है कि देवगण उन्हीं व्यक्तियों को चाहते हैं जो उत्पादक श्रम में संलग्न हैं। जो लोग आलस्यवश निष्क्रिय पड़े रहते हैं, वे देवों को प्रिय नहीं होते हैं।[5]

वेदों में सम्पत्ति के अधिकार को राज्य द्वारा मान्यता देने एवं उसका संरक्षण करने पर बल दिया गया है तथा इस संदर्भ में अनेक स्थलों पर राजकीय दायित्वों की अभिव्यक्ति हुई है। एक प्रसंग में राज्य से यह निवेदन किया गया है कि वह प्रजा द्वारा वरण करने योग्य धन का सम्प्रेषण करें। इसी प्रकार इन्द्र से प्रजा की सम्पत्ति की सुरक्षा की बात की गई है।[6] वेदों में जहां व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता दी गई है वहीं यह भी प्रतिपादित किया गया है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का उपभोग सार्वजनिक व सामाजिक हित में किया जाना चाहिए, व्यक्तिगत हित में नहीं। वेदों में स्पष्टतः यह उल्लेख मिलता है कि व्यक्ति की सम्पत्ति का उचित व सार्थक प्रयोग तभी होगा, जब वह दूसरों को लाभान्वित करेगा। अनेक प्रसंगों में सम्पत्ति के दान को महत्व प्रदान किया गया है जो यही स्पष्ट करता है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति तभी तक वैद्य है जब उससे पूरा समाज लाभान्वित हो। अनेकशः यह प्रतिपादित किया गया है कि व्यक्ति को अपने श्रम द्वारा अर्जित सम्पत्ति का एक अंश दूसरों के उपभोग के लिए पृथक कर देना चाहिए।[7]

सम्पत्ति द्वारा सार्वजनिक हित के संदर्भ में वेदों में सम्पत्ति को विनियमित करने के प्राधिकार को स्पष्ट किया गया है। एक प्रसंग में प्रजा की ओर से सम्राट के प्रति यह प्रार्थना की गई है, 'हे सम्राट! राष्ट्र के लोगों के कल्याण के लिए अपने धन का दान न करने वाले लोगों में निहित धन को सबके स्वामी तुम अच्छी तरह देख लेते हो, उसके धन को तुम हमें दे दो।[8]

उक्त प्रसंग निजी सम्पत्ति का अधिग्रहण कर, सार्वजनित हित के लिए उसके प्रयोग को सुनिश्चित करने के राजकीय प्राधिकार को भली भांति व्यक्त कर देता है। एक अन्य प्रसंग में इन्द्र की प्रशंसा करते हुए यह कहा गया है कि वह इन्द्र अपने धन को प्रजा के कल्याण में, दान ना देने वाले बड़े–बड़े घरों के धन को छीन कर उत्पादन के काम में लगे लोगों को दे देता है।[9]

एक स्थल पर इन्द्र की ओर से व्यक्त करवाया गया है कि मैं दस्यु लोगों से धन लेता हूँ।[10] जो व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को प्रजाजनों के कल्याण के लिए व्यय नहीं करना चाहता, उससे सम्पत्ति का सार्वजनिक कल्याण के लिए व्यय करवाना राजकीय दायित्व के रूप में प्रतिपादित किया गया है।[11]

उपरोक्त विवेचन यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय चिंतन में सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई है किन्तु उसे निरपेक्ष नहीं माना गया है। यह प्रतिपादित किया गया है कि सम्पत्ति का अधिकार सामाजिक नियन्त्रण के अधीन है तथा राज्य वह प्राधिकृत सत्ता है जो सम्पत्ति का सामाजिक और उद्देश्यपरक नियमन सुनिश्चित करेगी।

भारतीय चिन्तन परम्परा में चार पुरूषार्थों की मानवीय उपलब्धियों के चार आयामों के रूप में गणना की गई है। सम्पत्ति की संस्था, आवश्यकता व सार्थकता को अर्थ व काम प्रस्थापित करते हैं वहीं धर्म व मोक्ष के साथ इन दोनों का संयोग सम्पत्ति के अर्जन, धारण व उपयोग की सीमाऐं आरोपित करता है। धर्म यह सुनिश्चित करता है कि सम्पत्ति का अर्जन उचित व नैतिक साधनों से किया जाना चाहिए तथा उसको उपभोग सम्पूर्ण समाज के हित में होना चाहिए। मोक्ष की मर्यादा इस रूप में परिभाषित होती है कि प्रथमतः मनुष्य का लौकिक आचरण पारलौकिक कल्याण या सत्य से साक्षात्कार के उद्देश्य से प्रेरित होना चाहिए। द्वितीयतः उसका आचरण सांसारिक उपलब्धियों के प्रति मोहग्रस्त नहीं होना चाहिए। यह स्थिति यह व्यक्त करती है कि सृष्टि में चर–अचर जो कुछ भी विद्यमान है वह सब एक सर्वव्यापी शक्ति के अधीन है तथा व्यक्ति स्वाभाविक रूप से सम्पत्ति के त्याग पूर्वक उपभोग को प्रधानता प्रदान करें। ईशावास्योपनिषद् में इस स्थिति को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हुए मनुष्यों को परामर्श दिया गया है कि अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़–चेतन स्वरूप विद्यमान है, वह समस्त ईश्वर से व्याप्त है। अतः मनुष्य उसका त्यागपूर्वक उपभोग करें तथा इसमें आसक्त न हो, क्योंकि यह धन सम्पदा किसकी है, अर्थात किसी की नहीं।[12]

स्मृति साहित्य में सम्पत्ति के अर्जन एवं व्यक्ति द्वारा उसके उपभोग एवं नियमन करने की राज्य की सामर्थ्य की विवेचना की गई है। मनुस्मृति में व्यक्ति के सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता प्रदान करते हुए सम्पत्ति की सुरक्षा करने का दायित्व राज्य को दिया गया है। शासन व्यक्तियों को व्यवसाय तथा आजीविका के रूप में सम्पत्ति अर्जित करने की अनुमति देगा एवं अर्जित धन पर नीति अनुसार निश्चित कर लेगा। मनुस्मृति में एक अन्य प्रसंग में उल्लेख है कि शासक एक ऐसी व्यावहारिक नीति अपनाएगा जिससे जनता अपने परिश्रम से अर्जित धन व अन्य सम्पत्तियों को अपने पास रख सकें।[13] इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुस्मृति राज्य द्वारा सम्पत्ति के पूर्ण अधिग्रहण का निषेध करती है। ग्रन्थ में विभिन्न वर्गों की सुरक्षा का दायित्व भी राज्य को प्रदान करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि अवयस्क और अनाथ व्यक्ति की सम्पत्ति का उसके वयस्क होने तक शासन द्वारा संरक्षण किया जायेगा। बच्चा या पुत्रहीन, पतिव्रता विधवा स्त्री की सम्पत्ति की रक्षा करने का दायित्व भी राज्य को प्रदान किया गया है।[14] उक्त कथन यह स्पष्ट करता है कि मनुस्मृति स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार प्रदान करती है। ग्रन्थ में इस सामाजिक यथार्थ को ध्यान में रखा गया है कि स्त्री को कमजोर मानकर बन्धु–बांधव अथवा अन्य लोग उसकी सम्पत्ति को हड़पने का प्रयास करते हैं। अतः शासन को यह विशेष दायित्व दिया गया है कि वह ऐसी चेष्टा करने वाले व्यक्तियों को दण्डित व नियन्त्रित कर उनके सम्पत्ति के अधिकार की सुरक्षा करेगा।[15] इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रन्थ में सम्पत्ति सम्बन्धी विवादों के निपटारे के लिए निश्चित सिद्धान्तों व सूत्रों की व्यवस्था की गई है। जो निजी सम्पत्ति की संस्था के व्यवस्थित व समाज स्वीकृत स्वरूप को स्पष्ट करता है। किन्तु सम्पत्ति के अधिकार को मनुस्मृति में मर्यादाहीन अथवा नियन्त्रण मुक्त नहीं माना गया हैं निजी सम्पति को सामाजिक नियन्त्रण के अधीन मानते हुए राजकीय प्राधिकार की स्पष्ट घोषणा की गई है तथा राज्य को यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वह अग्राह्य सम्पति का अधिग्रहण कभी न करें तथा ग्राह्य का आवश्यक रूप से करें।

मनुस्मृति सम्पत्ति के उत्तराधिकार को भी मान्यता प्रदान करती है। इसमें स्त्रियों को भी सम्मिलित करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि पिता की सम्पत्ति में से उसका चतुर्थांशं पुत्री को प्रदान किया जायेगा।[16] साथ ही निजी सम्पत्ति के एक अंश को आवश्यक रूप से सामाजिक हित में प्रयुक्त किया जायेगा।

रामायण मूलतः सांस्कृतिक प्रकृति का ग्रन्थ है किन्तु ग्रन्थ में एक व्यवस्थित राजनीतिक दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है। ग्रन्थ में सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता प्रदान करते हुए कहा गया है कि शासक व्यक्ति द्वारा अर्जित सम्पत्ति का छठा भाग कर के रूप में प्राप्त करेगा तथा प्रतिफल में प्रजा के पुत्र के समान रक्षा करेगा। इस दायित्व से विमुख होने वाला राजा अधर्म का भागीदार बनेगा।[17] स्पष्ट है कि कर के द्वारा प्राप्त धन सामाजिक हित में काम में लेने को मान्यता प्रदान की गई है।

महाभारत में सम्पत्ति के अधिकार को स्वीकृति प्रदान करते हुए राज्य की स्थापना का मूल प्रयोजन ही सम्पत्ति की रक्षा करना माना गया है। यदि राज्य अपने इस दायित्व का निर्वहन निष्ठापूर्वक नहीं करता है तो व्यक्ति की सम्पत्ति का सुरक्षित रहना असम्भव हो जायेगा। यदि समाजकटंकों द्वारा किसी व्यक्ति की सम्पत्ति छीन ली जाती है तो राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह सम्पत्ति के स्वामी को उसकी सम्पत्ति के बराबर मूल्य अदायगी राजकीय कोष से करें।[18] साथ ही राज्य को भी मर्यादित किया गया है कि वह व्यक्ति से अनुचित करों का संग्रहण नहीं करेगा।

महाभारत सम्पत्ति की संस्था का नियमन करने की राज्य की शक्ति को मान्यता प्रदान करता है तथा प्रतिपादित करता है कि राज्य पर आपत्ति आने अथवा अन्यथा आवश्यक हो जाने पर शासक प्रजा की सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकता है। किन्तु सम्पत्ति का अधिग्रहण अस्थाई ही हो सकता है क्योंकि यह भी प्रतिपादित किया गया है कि शासक सम्पत्ति के उपभोग की आवश्यकता समाप्त हो जाने के पश्चात् सम्पत्ति को या तो वापस कर दे अथवा उसके प्रति कर का भुगतान करे। महाभारत निजी सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता देते हुए भी सम्पत्ति के ऐसे उपभोग को सुनिश्चित करने पर बल देता है, जिससे सार्वजनिक हित सिद्ध हो सके। इसी कारण ग्रन्थ में सम्पत्ति का सबके साथ मिल कर उपभोग करने को सभी वर्णों के लिए उपयोगी धर्म माना गया है।[19]

वर्ण व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था को चार भागों में विभाजित किया गया है तथा केवल वैश्य वर्ण को सम्पत्ति संग्रह करने का पात्र माना गया है। साथ ही यह स्पष्ट किया गया है कि वे लोभ–लालच में वशीभूत होकर सम्पत्ति का संग्रह नहीं करेंगे। सम्पत्ति संग्रह में पवित्र भाव का होना अपरिहार्य है। महाभारत में दान को महत्वपूर्ण माना गया है ताकि सम्पत्ति का सामूहिक उपभोग सुनिश्चित हो सके। सभी उच्च वर्णों से यह अपेक्षा की गई है कि वे शुद्रों का भरण पोषण करेंगे।[20] क्षत्रिय वर्ण से सम्पत्ति के संग्रह की अपेक्षा नहीं की गई है वहीं ब्रह्मण वर्ण को सम्पत्ति अर्जन निषिद्ध किया गया है तथा शूद्र वर्ण अपने स्वामियों के अधीन माना गया है।

इस प्रकार महाभारत में भी सम्पत्ति के अधिकार को निरपेक्ष न मानकर आवश्यकतानुसार उसके नियमन का अधिकार राज्य को प्रदान किया गया है।

अर्थशास्त्र में सुख का आधार धर्म को, धर्म का आधार अर्थ को व अर्थ का आधार राज्य को माना गया है।[21] इन तीनों सूत्रों की एक साथ मीमांसा करने पर सम्पत्ति की संस्था और उससे राज्य द्वारा नियमन की प्रवृति व क्षेत्र का स्वतः आभास हो जाता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में निजी सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई है। धर्म, अर्थ और राज्य की जिस अन्योन्याश्रित का निरूपण ग्रन्थ में किया गया है वह स्पष्ट कर देता है कि जहां व्यक्तियों के द्वारा सम्पत्ति का अर्जन व धारण उचित है।वहीं अर्थ सिद्धि प्रयोजन हीन नहीं मानी गई है। अपितु इसे धर्म की सिद्धि का साधन माना गया है। अर्थ की राज्य पर निर्भरता यह स्पष्ट कर देती है कि व्यक्ति के द्वारा सम्पत्ति के अर्जन के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों का धर्म के अनुकूल नियमन करना राज्य का प्राधिकार है। इस प्रकार सम्पत्ति का धर्मानुकूल नियमन सम्पत्ति के निजी अधिकार की मर्यादाओं व सीमाओं को रेखांकित करता है। सम्पत्ति का ऐसा संग्रह जो अनैतिक साधनों से किया गया हो तथा सम्पत्ति का ऐसा उपभोग जो दूसरों के सुख का कारण न बन सके, धर्मसम्मत नहीं माना जा सकता। अर्थशास्त्र में यह भी उल्लेख किया गया है कि सम्पत्तिवान मनुष्य का सर्वत्र आदर होता है। अतः व्यक्तियों को सम्पत्ति का अर्जन व संग्रह करना चाहिए किन्तु कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में निजी सम्पत्ति पर सामूहिक अथवा सामाजिक नियन्त्रण के संदर्भों एवं सीमाओं की विस्तृत मीमांसा नहीं की है। केवल यह प्रतिपादित किया गया है कि राज्य द्वारा व्यक्तियों की सम्पत्ति की सुरक्षा की जायेगी। यदि किसी व्यक्ति की सम्पत्ति का किसी अन्य के द्वारा अपहरण कर लिया जाता है और राज्य उसे वापस नहीं दिला पाता है तो उस सम्पत्ति का मूल्य राज्य राजकीय कोष से व्यक्ति को प्रदान करेगा।[22] इससे सम्पत्ति के संदर्भ में राजकीय दायित्वों को भली भांति समझा जा सकता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय चिंतन परम्परा में व्यक्ति के सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता प्रदान की गई है। किन्तु यह मान्यता निरपेक्ष अथवा असीमित नहीं है। अपितु उस पर युक्ति युक्त निर्बन्धन है। सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकार को सामाजिक अथवा सामूहिक नियन्त्रणों के अधीन रखा गया है तथा राज्य का यह दायित्व माना गया है कि वह व्यक्ति की सम्पत्ति की सुरक्षा करने के साथ–साथ सम्पत्ति के न्यायोचित नियमन की व्यवस्था करेगा। किन्तु प्राचीन भारतीय चिंतन में राज्य द्वारा व्यक्ति की सम्पत्ति के पूर्ण अधिग्रहण का निषेध किया गया है। स्पष्ट है कि सम्पत्ति का अधिकार मनुष्य के लिए आवश्यक है तथापि वह सामाजिक नियमन का विषय है। दार्शनिकों में मतवैभिन्य सम्पत्ति के अधिकार के अस्तित्व के औचित्य के विषय में नहीं रहा है अपितु सम्पत्ति के निजी अधिकार के सामाजिक नियमन की मात्रा व प्रकृति के संदर्भ में रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद, 7–4–7
2. वही, 1
3. वही, 2

4. वही, 4
5. वही, 8
6. वही, 9, 81
7. वही, 10, 107
8. वही, 1
9. वही, 7
10. वही, 10
11. यजुर्वेद, 9
12. ईशावास्योपनिषद, मंत्र
13. मनुस्मृति, सप्तम् अध्याय
14. वही, अष्ट्म अध्याय
15. वही, अष्ट्म अध्याय
16. वही, नवम् अध्याय
17. वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड – 6
18. महाभारत, शांति पर्व, अध्याय – 75
19. वही, अध्याय–87, 70
20. वही
21. कौटिल्य अर्थशास्त्र, चाणक्य प्रणीत सूत्रम्
22. वही, तृतीय अधिकरण.

❖◆❖